International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 2; Issue 6; November 2016; Page No. 26-28

जैन दर्शन में ध्यान की विधियाँ

[1] धनंजय कुमार जैन, [2] डॉ0 उपेन्द्र बाबू खत्री, [3] डॉ0 अखिलेश सिंह, [4] डॉ0 नवीन दीक्षित

[1] शोधार्थी, सॉची बौद्ध–भारतीय ज्ञान विश्वविद्यालय, बारला, रायसेन, मध्य प्रदेश, भारत।

[2, 3, 4] सहायक प्राध्यापक, सॉची बौद्ध–भारतीय ज्ञान विश्वविद्यालय, बारला, रायसेन, मध्य प्रदेश, भारत।

सारांश

जैन दर्शन एक ऐसी यौगिक परंपरा है जो कठोर तपस्या द्वारा अपने ऊपर नियंत्रण करने का प्रयास करता है तथा अपने चित्त को निर्मल करने के लिये अपने कर्मों से निर्मल कर्म करने का प्रयास करता है। अहार विहार में अहिंसा का बहुत सूक्ष्म अध्ययन और प्रयोग करता है। जैन धर्म में ध्यान की विधियॉ कायोत्सर्ग और सामायिक के रूप में सामान्य जन के लिये उपयोग में लायी जाती हैं। मुख्य रूप से ज्ञानार्णव तथा ध्यानस्तव नामक ग्रंथ में अनेक ध्यान विधियों को बताया गया है जिसकी साधना की जाये तो निरंतर ध्यान में रहा जा सकता है। ये ध्यान विधियॉ सामान्य जनों के बीच में प्रचलित नहीं हैं, इस शोधपत्र में यह प्रयास किया है कि जैन दर्शन में वर्णित उन विधियों को प्रस्तुत किया जाये जो सामान्य जन के लिये के उपयोगी हो सकें। सामान्य जन के मानसिक स्वास्थ्य के लिये इन विधियों को उपयोग किया जा सकता है।

मूलशब्द: जैन दर्शन में आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान, शुक्लध्यान।

प्रस्तावना

ध्यान एक ऐसा शब्द है जो मानव समाज की दैनिक दिनचर्या से संबंधित तथा परिचित शब्द है जिसका सामान्य अर्थों में तो सदा ही प्रयोग करते है, जैसे ध्यान से काम करो, ध्यान से चलो आदि–आदि जिसका सामान्यतः अर्थ है मन,वचन,काया का योग अर्थात् जो कार्य कर रहे हैं उसमे मन तथा शरीर एक साथ हों दूसरे शब्दों में कहा जाये तो उस भाव दशा को ध्यान कहा जाता है जिसमें मन एकाग्र हो तथा अन्य शब्दों में कहें तो वह भाव दशा जिसमें मन जिस कार्य को कर रहा है लगातार बिना विक्षेप के उसी में संलग्न हो परन्तु मनोविज्ञान में इसी ध्यान शब्द का प्रयोग अवधान के रूप में प्रयोग होता है जिसका अर्थ होता है प्रत्यक्षण में पूरी तरह सक्रिय होना, मनोविज्ञान भाव दशा को बताने के लिये चेतना के तीन स्तरों को बताता है। चेतन मन, अवचेतन मन, और अचेतन जहॉ चेतन मन में होने वाली क्रियाये विचार पूर्वक होती है। अवचेतन, चेतन और अचेतन के बीच का भाग है और अचेतन मन वह भाग है, जिसमें इच्छाएँ और संस्कार रहते है।

योग में ध्यान क्या है ? ध्यान को कुछ दार्शनिकों ने मन का स्नान की संज्ञा दी है अर्थात् मन जो विचारो और भावों के मकड़जाल से दूषित हो जाता है उसे पुनः निर्विचार दशा में लाना और समस्त भावों से मुक्त कर शुद्ध चेतना का अनुभव कराना है इन अर्थों में मन जिसका काम संकल्प विकल्प करना है उसका काम रूक जाता है मन, अमन हो जाता है शांत हो जाता है। इस मन को अमन करने के लिये अनेक ध्यान विधियों को हमारे ऋषियों ने विकसित किया था महर्षि पतंजलि ने ''चित्त वृत्ति निरोधाः योगः'' कहकर मन की शुद्ध अवस्था, पूर्ण ध्यान की अवस्था या जिसे समाधि कहा उस अवस्था को बताया है। इस चित्त के दूषित होने का कारण उन्होने दृष्टा दृश्य संयोग को बताया है, दृश्य के संयोग से इसमें वृत्तियॉ और भाव का निर्माण होता है और ये भाव दो प्रकार के हो सकते है क्लिष्ट या अशुभ भाव और अक्लिष्ट अर्थात्

शुभ भाव परन्तु इन दोनों भावों में से क्लिष्ट से अक्लिष्ट भाव में आना तथा उसमें लगातार बने रहना ध्यान कहा है। ''तत्र प्रत्येकतानता ध्यानम्''। उस भाव दशा में लगातार अविच्छिन्न बने रहना ध्यान है। परन्तु ध्यान को मन की ऐसी दशा भी कहा जा सकता है जहॉ विचार नही हो केवल चेतना हो, इस समय काल और स्थान का भी बोध न रहे केवल चेतना अपने स्वरूप में स्थित हो। ऐसा भी माना जाता है कि ध्यान किया नहीं जाता है यह होता है, ध्यान की कोई पद्वति नहीं होती है, वह स्वाभाविक रूप से घटता है परन्तु कुछ का मानना है ध्यान निसर्ग नहीं है, ध्यान पद्वति को जाने बिना उसमें प्रवेश नहीं पाया जा सकता, यह कुछ व्यक्तियों के लिये माना जा सकता है परन्तु सबके लिये नही। ध्यान के प्रारंभकाल मे कुछ पद्वति को प्रयोग में लाया जा सकता है। परन्तु विकासात्मक काल में उसकी अपेक्षा नहीं रहती है, यह स्वतः होने लगता है परन्तु जैनदर्शन में जो ध्यान की विधियॉ बतायी गई है वे इस ओर भी इंगित करती है कि जैसे विचारों और भावों में हमारा मन लगा है वैसा ध्यान होता है, इस आधार पर उन्होंने ध्यान की विधियों को चार भागों में विभाजित किया है – आर्तध्यान,रौर्दध्यान, धर्मध्यान,शुक्ल ध्यान।

जैन धर्म में ध्यान

जैन धर्म में ध्यान में सफल होने के लिये, प्रथम स्थान और योग्यता का वर्णन आता है, वही व्यक्ति ध्यान कर सकता है जो अपने इंद्रियों को रोकने की इच्छा रखता है। इसके बाद सही स्थान का चयन करना चाहिये वह स्थान क्षोभकारक, मोहक, तथा विकार उत्पन्न करने वाला नहीं होना चाहिये। इसके बाद क्रमशः उपर्युक्त आसन में ध्यान करना चाहिये जिस आसन में ध्यानी लम्बे समय तक स्थिर होकर बैठ सके उस आसन को ध्यान के लिये चुनना चाहिये। अन्यथा ध्यान साधने में बाधा उत्पन्न होती है। इसके बाद मन को स्थिर करने के लिये प्राणायाम की सहायता लेने का भी विधान मिलता है, लेकिन यह प्रारंभिक साधको के लिये ही है। इसके पश्चात् साधक को वीर्य(पुरषार्थ) पूर्वक ध्यान करने की प्रतिज्ञा करने को कहा है।

निरूद्ध करण ग्रामं समत्वम् बलभ्य च।
ललाट देशं संलीनं विद्यां निश्चलं मनः।। ज्ञानार्णव 30/12।।

इंद्रियों को विषयों से रोककर और रागद्वेष को दूर कर समता का अवलंबन कर अपने ललाट स्थान में स्थिर करना चाहिये। इस

प्रकार करने से समाधि की सिद्धी होती है।

आर्त रौद्रं तथा धर्म्य शुक्लं चेति चतुर्विधम्।
तत्राद्यं संसृते हेतुद्वेयं मोक्षस्य तत्परम्।। ध्यानस्तव 8/1।।

ध्यान, आर्त, रौद्र, धर्म्य और शुक्ल के भेद से चार प्रकार का है। प्रथम आर्त और रौद्र संसार के कारण है तथा अंतिम 2 धर्म और शुक्ल मोक्ष के कारण है।

विप्रयोगे मनोज्ञस्य संप्रयोगाय संततम्। संयोगे च मनोजस्य तद्वि योगाय या स्मृतिः।। ज्ञानार्णवः 1।।
पुंसः पीड़ाविनाशाय स्यादार्त सनिदानकम्। गृहस्थस्य निदानेन बिना साधो स्त्रयं क्वचित।। ज्ञानार्णवः 2।।

1. आर्तध्यान

अभीष्ट पदार्थ का वियोग होने पर उसके संयोग के लिये, अनिष्ट का संयोग होने पर उसके वियोग के लिये तथा पीड़ा के विनाश के लिये जो जीव का निरन्तर स्मरण या चिन्तन होता है वह आर्तध्यान कहलाता है।

आर्त यह ऋत शब्द से बना है ऋत का अर्थ होता है दुःख देना, तद्नुसार दुःख के निमित्त से या दुःख में संक्लेश परिणाम होता है उसे आर्तध्यान कहते है। यह विषय के भेद से चार प्रकार का है। किसी अपनी प्रिय वस्तु के मिलने या खो जाने पर जो दुःख रूपी विचार रहता है वह आर्तध्यान कहलाता है। इसी प्रकार इष्ट पदार्थों का संयोग होने पर इनका कभी वियोग न हो इसके लिये और संयोग नहीं है तो किस प्रकार इनकी प्राप्ती होगी इसके लिये जो दुःख रूप विचार मन में रहते है। यह सब प्रथम आर्तध्यान के अंर्तगत है।

अनिष्ट पदार्थ के मिलने से होने वाले दुःख, और इसको दूर करने के निमित्त जो दुःख बना रहता है तथा वह फिर से प्राप्त न हो यह दूसरा आर्तध्यान है।

रोग के कारण उत्पन्न होने वाले दुःख और उसके निवारण हेतु प्रयास में दुःख, और भविष्य में यह रोगादि उत्पन्न न हो इसके लिये चिंता रूप दुःख यह तीसरा आर्तध्यान है। भविष्य में प्राप्त होने वाले सुखों की कल्पना से वर्तमान मे मन मे उठने वाला दुःख चौथा आर्तध्यान है।

2. रौद्र ध्यान

हिंसनासत्य चौर्यार्थ रक्षणेभ्यः प्रजायते।
क्रूरो भावो हि यो हिंस्रो रौद्रं तद् गृहिणोमतम्।। ध्यानस्तव 11–12।।

हिंसा आदि के कारण और दूसरों को दुःख देने के कारण रूप जो भाव है वह रौद्र ध्यान कहलाता है। रौद्र ध्यान विषय के अनुसार 4 प्रकार का है।

a) हिंसानुबंधी रौद्रध्यान :– अर्थात् हिंसा के कारण उत्पन्न क्लेश परिणाम (ध्यान) हिंसानुबंधी ध्यान है।
b) मृषानुबंधी रौद्रध्यान :– झूठ बोलने के कारण उत्पन्न क्लेश को मृषानुबंधी ध्यान कहते है।
c) स्तेयानुबंधी रौद्रध्यानः– चोरी करने के कारण या चोरी हो जाने पर होने क्लेश रूप परिणाम को स्तेयानुबंधी रौद्र ध्यान कहते है।
d) विषय संरक्षण अनुबंधी रौद्रध्यानः– किसी वस्तु के संरक्षार्ण उत्पन्न रौद्र ध्यान इसके अंर्तगत आता है।

3. धर्म ध्यान

जिनाज्ञा कलुषापाय कर्मपाक विचारणा।
लोक संस्थान विचारश्य धर्मो देंव त्वयोदिता।। ज्ञानार्णवः12/1।।
अनपेतं ततो धर्मधतद् धर्म्य चतुर्विधम्।
उत्तमों वा तितिक्षा वस्तुरूपस्तथा परः।। ज्ञानार्णवः13/1।।

जिनदेव की आज्ञा जिनागम, पाप के अपाय, कर्म के विपाक और लोक के आकार का जो विचार किया जाता है उसे हे देव आपने धर्म कहा है। उसमें जो ड़र नहीं है, उससे परिपूर्ण है वह धर्मध्यान कहलाता है, जो विषय भेद से चार प्रकार का है। जीव का मोह के क्षोभ से रहित जो भाव परिणति होता है उसका नाम धर्म है, और वह सम्यक दर्शन, सम्यकज्ञान और सम्यक चारित्र के रूप में प्रकट होता है। जब व्यक्ति विशुद्ध ज्ञानमयी चेतना में आत्मबुद्धि करता है और चेतना के विकार रागादिक भावों को कर्मजनित हेय मानता है वह धर्म ध्यान कहलाता है। जो मन अज्ञान दशा में है, वह बिंदु स्वरूप से अलग हो जाता है और जो मन विज्ञान कहिये, सम्यकज्ञान से युक्त होता है वह आनंद को प्राप्त होता है। अर्थात् सम्यकज्ञान मुक्ति का कारण है। ध्यानी, आत्मा को वचन और काया से अलग करके मन से अभ्यास करे तथा अन्य कार्यों को वचन और काय से करे, चित्त से नहीं करें चित्त, से तो आत्मा का ही अभ्यास करे।

a) आज्ञाविचय धर्म ध्यान

अनादि विभ्रमान्मोहतनअभ्यासाद संग्रहात।
ज्ञात मप्यात्मनस्तत्वं प्रस्खलत्येव योगिनः।। ज्ञानार्वण 1/23।।

योगी आत्मा के स्वरूप को यथार्थ जानता हुआ भी अनादि विभ्रम की वासना से तथा मोह के उदय से और बिना अभ्यास से उस तत्व के संग्रह के अभाव से, मार्ग से च्युत हो जाता है अर्थात् ध्यानी भी तत्व स्वरूप से चलायमान हो जाता है।

अर्थात् जिस धर्मध्यान में अपने जैन सिद्धांत में प्रसिद्ध वस्तु, जिन आज्ञा का प्रधानता से चिंतन करे सो आज्ञाविचय धर्मध्यान कहा है।

b) अपाय विचय ध्यान

जिस धर्मध्यान में कर्मों का अपाय हो(नाश) हो तथा इस प्रकार चिंतवन करे कि सम्यकज्ञान, दर्शन, ज्ञान,चारित्र को न पाकर मेरी दुर्गति हुयी। संसार में बहुत समय मानसिक और शारीरिक कष्ट सहे और जन्म मरण दुःख और उपार्जन किये कर्मों के नाश का उपाय जो रत्नात्रय सो हमने नहीं पालन किया है। फिर संसार का प्रतिपक्षी जो मोक्ष है उसका अविनाशी, अनन्त बाधारहित स्वभाव से ही उत्पन्न हुआ सुख किस उपाय से प्राप्त हो? फिर ऐसा ध्यान करे कि मेरे स्वरूप को जानने से मैंने तीनों लोकों को जान लिया, क्योंकि मै ही सर्वज्ञ, सबका देखने वाला, निरंजन और समस्त कर्म कालिमा से रहित हूँ।

c) विपाक विचय ध्यान

प्राणियों के अपने उपार्जन किये हुये कर्म का फल प्राप्त होता है वह विपाक नाम से जाना जाता सो वह कर्मोदय क्षण प्रतिक्षण उदय होता है और जिसके ज्ञानावरणी आदि अनेक रूप हैं। इस प्रकार भयानक संसार रूप समुद्र में जो जीव हैं वे ज्ञानावरणादि कर्मों के कटुपाक से संयुक्त हैं, वे दुर्गति सुख–दुःख रूप संतान से संतापित

हैं। मिथ्यात्व रूप पवन से प्रेरित हुये क्लेश भोगते हैं। सो जो धन्य पुरूष हैं वे अपनी मुक्ति की सिद्धी के लिये इस विपाक विचय ध्यान का स्मरण करें। अतः जो कर्म का निरंतर उदय हो रहा है यह विपाक है, इसको चिन्तवन करनें से परिणाम विशुद्ध होते हैं।

d) संस्थान विचय धर्मध्यान

प्रथम तो सर्व इस प्रकार से कहे हुये लोक के स्वरूप को इस प्रकार नियत मर्यादा सहित व अनियत मर्यादा सहित चिन्तवन करता हुआ जो निर्मल बुद्धि मुनि है, उसको प्रमाद रहित ध्यान करने से नियम से शीघ्र ही केवलज्ञान की प्राप्ती होती है। इस प्रकार संस्थान विचय धर्मध्यान से लोक संस्थान का चिंतन करना होता है। इस प्रकार लोक के संस्थानों का ध्यान करना चाहिये।इस संस्थान विचय ध्यान के चार भेद किये गये है– 1.पिंडस्थ ध्यान 2. पदस्थ ध्यान 3. रूपस्थ ध्यान 4. रूपातीत ध्यान

1. पिंडस्थ ध्यान

पिंडस्थ ध्यान में पॉच धारणायें की जाती है
1. पार्थिवी धारणा 2. आग्नेयी धारणा 3. श्वसना धारणा 4. वारूणी धारणा 5. तत्वरूपवती

2. पदस्थ ध्यान

जिसको अनादि सिद्धांत में प्रसिद्ध जो वर्ण मातृ का अर्थात् अकारादि स्वर और ककारादि व्यंजनों का समूह है उसका चिंतन करे क्योंकि यह वर्ण मातृका सम्पूर्ण शब्दों की रचना की भूमि है और जगत से वंदनीय है। ध्यान करने वाला पुरूष नाभिमंडल पर स्थित सोलह दल पंखुडी के कमल में प्रत्येक दल पर क्रम से फिरती हुयी स्वरावली का अर्थात् अ, आ, इ, ई, उ, ऋ, लृ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः, इन अक्षरों का चिंतवन करे।
तत्पश्चात् संयमी मुनि अपने हृदय स्थान पर कर्णिका सहित 24 पत्रों के कमल का चिंतन करके उसकी कर्णिका तथा पत्रों में क,ख,ग,घ,ड. ––––––– भ,म इन पच्चीसी अक्षरों का ध्यान करे।

अनेनैव विशुद्धयन्ति जन्तवः पाप पंकिता।
अनेनैव विमुच्यते भवक्लेशान्मनीषिणां।। ज्ञानार्णवः43/28।।

जो जीव पाप से मलिन हैं वे इसी मंत्र से विशुद्ध हो जाते हैं और इसी मंत्र के प्रभाव से मनीषीगण संसार के क्लेश से छूटते हैं।

वीतरागो भवेद्योगी यत्किंच्चदपि चिन्तयेत।
तदैव ध्यानभक्नातमतोअन्यद् ग्रन्थ विस्तरः।। ध्यानस्तव 113/28।।

अर्थात् वीतराग योगी जो कुछ भी चिंतवन करे वही ध्यान है।
जो मुनि वीतरागी है उसको ध्यान की सिद्धि अवश्य होती है। जो राग से पीड़ित है उसका ध्यान करना क्लेश के लिये ही है, अर्थात् रागी को ध्यान की सिद्धि नहीं होती है।

3. रूपस्थ ध्यान

इस रूपस्थ ध्यान में अरहंत भगवान का ध्यान करना चाहिये जिसमे अरहंत का किस प्रकार स्वरूप है उसका चिंतवन करना चाहिये। जिस रूप का आराधन करके संसार से निःसृपह मुनिगण मोक्ष को प्राप्त हुये है तथा मोक्षलक्ष्मी के संगम में उत्सुक भव्य जीव जिसका निरंतर ध्यान करते है। रूपस्थ ध्यान कहलाता है।

4. रूपातीत ध्यान

वीतरागं स्मरन्योगी वीतरागो विमुच्यते।
रागी सरागमालभ्वय कूरकर्मा श्रितोभवेत।। ध्यानस्तव 1/24।।

ध्यान करने वाला योगी वीतराग का ध्यान करता हुआ, वीतराग होकर कर्मों से छूट जाता है और रागी का अवलम्बन करके ध्यान करने से, रागी होकर कर्मों के आश्रित हो जाता है, अर्थात् अशुभ कर्मों से बंध जाता है। यद्यपि यह आत्मा स्वभाव से अनन्त और जगत्प्रसिद्ध प्रभाव का धारक है, फिर समाधि/ध्यान में जोड़ा हुआ हो तो यह समस्त जगत को अपने चरणों में लीन कर लेता है।
इसके पश्चात् रूप में स्थिरीभूत है चित्त जिसका तथा नष्ट हो गये है विभ्रम जिसके ऐसा ध्यानी रूपातीत ध्यान में अमूर्त अजन्मा, इंद्रियों से अगोचर ऐसे परमात्मा के ध्यान का प्रारंभ करता है।
जिस ध्यान में ध्यानी मुनि चिदानन्दमय, शुद्ध, अमूर्त परमाक्षररूप, आत्मा को आत्मा को आत्मा से ही स्मरण करे अर्थात् उसे रूपातीत ध्यान कहा जाता है।

4. शुक्ल ध्यान

सवितर्क सवीचारं सपृथकत्व मुदाहतम्।
आद्यं शुक्लं द्वतीयं तु विपरीतं वितर्कभाक्।। ध्यानस्तव 1/17।।
श्रुतज्ञानं वितर्कः स्यायोगशब्दार्थ संक्रमः।
विचारोअथ विभिन्नार्थभासः पृथकत्वमीदितम्।। ध्यानस्तव 1/18।।

प्रथम शुक्ल ध्यान वितर्क, विचार और पृथकत्व से सहित तथा दूसरा शुक्लध्यान इससे विपरीत विचार पृथक्त्व से रहित होता हुआ वितर्क से सहित है। वितर्क का अर्थ श्रुतज्ञान है। योग शब्द और अर्थ के परिवर्तन को विचार कहते है। तथा निर्विचार दशा को शुक्ल ध्यान कहते है। शुक्ल ध्यान के चार भेद है प्रथम शुक्ल ध्यान का नाम पृथकत्व वितर्क सविचार है।
द्वतीय शुक्ल ध्यान का नाम एकत्व वितर्क अविचार है इस शुक्ल ध्यान में द्रव्य पर्याय आदि का भेद पूर्वक चिंतन होता है।

सूक्ष्मकाय क्रियस्थ स्याद्योगिनाः सर्ववेदिनः। शुक्लं सूक्ष्मक्रियं देव ख्यातम्प्रतिपाति तत्।।ध्यानस्तव।।

सूक्ष्म काय की क्रियाओं से युक्त सर्वज्ञ सयोगकेवली के तीसरा शुक्ल ध्यान होता है, मुक्ति की प्राप्ती में जब थोड़ा सा काल शेष रह जाता है तब उक्त केवली, योगों का निरोध करते है।
चौथा शुक्ल ध्यान अयोग केवली के शश्लेष्य अवस्था में होता है। शश्लेष्य का अर्थ समस्त शीलगुणों का स्वामित्व है। योग का आभाव हो जानें पर यह ध्यान होता है।

निष्कर्ष

उपरोक्त ध्यान विधियॉ, योगदर्शन में वर्णित ध्यान विधियों और तंत्र के ग्रंथों में वर्णित ध्यान विधियों से कुछ समानता रखती हैं। किन्तु विचारों और भावों का स्तर भी ध्यान के रूप में जैन दर्शन ने ग्रहण किया है और इसको 4 स्तरों में विभिन्न अवस्थाओं को वर्णित किया है, जो जैन दर्शन का अनूठापन प्रदर्शित करता है। इन ध्यान विधियों का प्रयोग करता हुआ व्यक्ति जीवित मोक्ष की अवस्था तक पहुँच सकता है। साथ इन विधियों का प्रयोग कर वर्तमान जीवन की मानसिक कठिनाईयों से मुक्त हो सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. ज्ञानार्णवः– श्री शुभचन्द्राचार्य विरचितः
2. ध्यानस्तव –श्री भास्करनन्दी विरचितः, वीर सेवा मंदिर दरियागंज दिल्ली,1976
3. .प्रेक्षाध्यान प्रयोग पद्धति आचार्य महाप्रज्ञ विरचित,परमश्रुत प्रभावक मण्डल, श्री मद् राजचन्द्र आश्रम, अगास, 1995
4. योग सूत्र–महर्षि पतंजलि विरचित गीता प्रेस गोरखपुर,
5. पुरूषार्थ सिद्धुपाय– श्री अमृतचन्द्रविरचित